सच्चा तथा झूठा सुसमाचार

जेक पुनेन

मसीहीयों को सामान्यतया कई तरह से दो वर्गो में बाँटा जा सकता है:

(1) "रोमन कैथोलिक" तथा "प्रोटेस्टेंट" – *जन्म* के आधार पर

(2) "अध्यक्षीय या एपिस्कोपल"(कन्फोर्मिस्ट) और "फ्री चर्च" (नॉन-कन्फोर्मिस्ट) – *चर्च पद्धति* के आधार पर

(3) "नया जन्म पाये हुए विश्वासी" तथा "नामधारी मसीही" – *अनुभव* के आधार पर

(4) "प्रचारक" और "उदार पंथी" – *सिद्धान्तों* के आधार पर

(5) "करिश्माई (केरिस्मेटिक)" और "अकरिश्माई (नॉन केरिस्मेटिक)" – *अन्य भाषाओं* के बोलने के आधार पर

(6) "पूर्णकालिक मसीही सेवक" तथा "कामकाजी मसीही सेवक" – *पेशे* के आधार पर

इस प्रकार और भी बहुत से श्रेणियाँ बनायी जा सकती हैं। पर इनमें से कोई भी श्रेणी उस मूल समस्या को हल नहीं करती जिसके लिये प्रभु यीशु इस दुनिया में आये थे।

कई लोग इस बात को जानते हैं कि "मसीह पापों के लिये मरा" (1 कुरि.15:3)। पर कई लोग इस बात को नहीं जानते कि बाइबल बताती है कि मसीह इसलिये भी मरा ताकि " हम अपने आप के लिये नहीं बल्कि उसके लिये जियें" (2कुरि.5:15)।

वचन के आधार पर मसीहीयों को वर्गीकृत करने के लिये निम्न तरीका ज्यादा उपयुक्त होगा:
"वे जो अपने लिये जीते हैं" और *"वे जो मसीह के लिये जीते हैं"*
"वे जो अपनी इच्छा पूरी करते हैं" और *"वे जो परमेश्वर के राज्य की खोज पहले करते हैं",* या
"वे जो धन के प्रेमी हैं" और *"वे जो परमेश्वर से प्रेम करते हैं"* (प्रभु यीशु ने कहा है कि दोनों से प्रेम करना असंभव है – लूका 16:13)

लेकिन मैंने ऐसी श्रेणियों के इस्तेमाल के बारे में कभी नहीं सुना। यह वर्गीकरण मसीही व्यक्ति के अन्तःकरण और परमेश्वर के साथ उसके जीवन से संबंध रखती हैं, जबकि पहले दी गई श्रेणियाँ सिर्फ उसके बाहरी जीवन से। परंतु स्वर्ग की दृष्टि से मसीहीयों के वर्गीकरण का दूसरा तरीका ही ठीक है। इसलिये यही महत्वपूर्ण भी है। इस श्रेणी में कोई हमें नहीं डाल सकता बल्कि स्वयं हमें ही अपने आपको जांचना पडेगा क्योंकि कोई और नहीं अपितु हम खुद ही अपने अंतर्मन की बातों को और इच्छाओं को सही तरह से जानते हैं। हमारे जीवनसाथी भी हमारे अंदरूनी जीवन से अंजान हो सकते हैं।

हमारा प्रभु प्रथमतया तो किसी को सिद्धान्त देने के लिये नहीं आया और न ही चर्च पद्धति देने या अन्य भाषाओं में बुलवाने, और न ही किसी प्रकार का अनोखा अनुभव देने। वो तो इसलिये आया ताकि "हमें हमारे पापों से

बचाये"। वो पेड़ की जड़ों पर कुल्हाड़ी रखने को आया था। पाप की जड़ है: *हमारा स्वकेन्द्रित होना* और *अपनी इच्छा की पूर्ति* करते रहना। यदि आप परमेश्वर को इस पाप की जड़ पर कुल्हाड़ी मारने नहीं देंगे तो आप सतही तौर पर ही मसीही बने रहेंगे। शैतान हमें इस छल में बनाये रख सकता है कि हम अपनी पद्धति अथवा अनुभव के आधार पर बाकि मसीहियों से अच्छे मसीही हैं।

शैतान को इस बात से कोई फर्क नहीं पड़ता कि हमारा सिद्धान्त कितना सही है या हमारे पास कैसा अनुभव है, जब तक कि हम अपने *आप के लिये जीते* रहें (यह पाप में होने के निशानी है)। मसीहीयत आज ऐसे लोगों से भरी पड़ी है जो अपने लिये जीते हैं और यह मानते हैं कि ईश्वर उन्हें बाकि मसीहियों से बेहतर समझता है क्योंकि उनके पास सही सिद्धान्त है या अनोखा अनुभव है। इससे हमें और कुछ नहीं, सिर्फ यही पता चल सकता है कि शैतान मसीहीयों को बरगलाने में कितना सफल हो गया है।

युहन्ना 6:38 में प्रभु यीशु ने अपने स्वर्ग से धरती पर आने का प्रयोजन बताया है :

(1) मानवीय इच्छा का त्याग करने (जो उनको मिली थी जब वे मनुष्य बनकर आये), और

(2) मनुष्य के रूप में पिता की इच्छा को पूरी करने के लिये (ताकि हमारे लिये उदाहरण बनें)

यीशु मसीह के सारे मानवीय जीवनकाल में, अर्थात पूरे 33 ½ वर्षों में – उन्होंने अपनी इच्छा का इनकार किया और पिता की इच्छा पूरी की। और यही बात उन्होंने अपने चेलों को सिखाई कि जो कोई उनका सच्चा चेला बनना चाहे, उसे वैसा ही करना पड़ेगा। वो हमारे पाप की जड़ "हमारी अपनी इच्छा की पूर्ति करने की आदत" पर वार करने को आये थे - और इसलिये कि हमें इस जाल से छुड़ाएं।

विज्ञान के क्षेत्र में, हज़ारों वर्षों से, आदमी यह गलती करता चला जा रहा था कि धरती सारे ब्रह्मांड का केंद्र है। मानवीय आँखों से ऐसा ही लगता था - क्योंकि सूरज, चाँद और सितारे 24 घण्टे धरती के चक्कर काटते प्रतीत होते थे। इस प्रचलित बात पर प्रश्न करने के लिये कोपरनिकस को साहसिक कदम उठाना पड़ा। सिर्फ 450 साल पहले यह बात सामने आई कि पृथ्वी तो सौर्य परिवार का भी केन्द्र नहीं है, सारे ब्रह्मांड की बात तो दूर की है। उसने पहली बार यह बताया कि पृथ्वी की रचना सूर्य को केन्द्र मानकर परिक्रमा करने के लिये की गई। जब तक इंसान इस गलत धारणा को माने रहा, उसकी सारी गणनाएं गलत थीं - क्योंकि उसकी केंद्र की परिकल्पना गलत थी। जैसे ही उसने सही केन्द्र को पहचान लिया, बाकि सारी गणनाएं स्वतः ही ठीक हो गईं।

ठीक यही बात हम पर भी लागू होती है. जब तक कि हम *स्वकेन्द्रित* बने रहते हैं जबकि हमें *ईश्वर-केंद्रित* होना चाहिये। इस गलत केन्द्रीयकरण से हमारी बाइबल के बारे में और परमेश्वर की इच्छा की समझ (हमारी गणनाएं) गलत होंगी। हम सोच सकते हैं कि हम सही होंगे परंतु असल में हम 100 प्रतिशत गलत होंगे।

इसी तरह हम आज के कई "अच्छे मसीही" लोगों को देख सकते हैं। एक ही बाइबल के उनके पास अलग अलग अर्थ होते हैं - और फिर भी हरेक इस बात से पूरी तरह सहमत है कि उसका ही अर्थ ठीक है और बाकी सब गलत। दूसरों के बारे में वे समझते हैं कि वे "धोखा खाये हुए" या भटके हुए हैं। ऐसा क्यों? क्योंकि उनका केन्द्र ही गलत है।

इंसान की सृष्टि परमेश्वर में केन्द्रित रहने के लिये की गई थी न कि स्वयं में। और जब मसीही का केन्द्र ही गलत हो जाता है तो उसका *सुसमाचार* भी गलत ही होगा। आजकल दो ही तरह के सुसमाचार प्रचार किये जा रहे हैं - *मानव-केन्द्रित* और *ईश्वर-केन्द्रित*।

मानव-केन्द्रित सुसमाचार मनुष्यों से वायदा करता है कि परमेश्वर वो सब कुछ उन्हें देगा जिससे उनकी दुनियावी ज़िन्दगी आरामदायक बनती है और स्वर्ग में वह उनके लिये एक स्थान सुरक्षित करेगा। लोगों को यही बताया जाता है कि यीशु मसीह उनके सारे पाप क्षमा कर देंगे, उनकी बीमारियाँ ठीक कर देंगे, उनको धन-दौलत और सुख देंगे, उनकी समस्याओं को हल करेंगे वगैरह वगैरह।
ऐसे व्यक्ति का केंद्र वो *स्वयं* ही रहता है, और परमेश्वर सिर्फ उसके इर्द-गिर्द घूमता है - एक सेवक की तरह - ताकि उसकी प्रार्थनाओं के जवाब दे और जो कुछ वो चाहता है वो करे। उसे सिर्फ परमेश्वर पर *विश्वास* करने और *हरेक वस्तु को यीशु नाम से मांगने* की जरूरत है।

यह झूठा सुसमाचार है, क्योंकि इसमें *पश्चाताप* का कहीं कोई ज़िक्र ही नहीं है। पश्चाताप (मन फिराने) के विषय में युहन्ना बपतिस्मा देने वाले ने, यीशु मसीह ने, पॉलुस ने और पतरस ने प्रचार किया। और आज पश्चाताप का ही प्रचार नहीं किया जा रहा है।

ईश्वर-केंद्रित सुसमाचार, इंसान को पश्चाताप करने का संदेश देता है। यह बताता है कि पश्चाताप का अर्थ है -

स्वयं (आत्म) से फिरना अर्थात अपने आप को केन्द्र से हटाना, अपनी इच्छा पूरी करते रहने से दूर रहना, अपनी मर्ज़ी से चलना छोड़ना, धन का लोभ दूर करना और दुनियावी चीज़ों का प्रेम छोड़ना (शरीर की अभिलाषायें, आँखों की इच्छायें, अभिमान इत्यादी)। और,

ईश्वर की ओर फिरना, अर्थात उससे सम्पूर्ण ह्रदय से प्रेम करना, उसको अपने जीवन का केन्द्र बनाना और उसकी इच्छा पालन करते हुए जीवन यापन करना आदि।

क्रूस पर मसीह की मृत्यु में हमारा विश्वास हमें हमारे पापों से क्षमादान तब ही दिला सकता है जब हम अपने गुनाहों के लिये पश्चाताप करें। कोई भी व्यक्ति तब ही पश्चाताप कर यीशु पर विश्वास करने के बाद ही पवित्र आत्मा की वो सामर्थ पाता है जिससे वो स्वयं का इनकार करके ईश्वर-केन्द्रित जीवन जी सके। यह वो सुसमाचार है जो यीशु ने और उनके चेलों ने प्रचार किया।

झूठा सुसमाचार दरवाजे को *बड़ा* और रास्ते को *चौड़ा* बनाता है (ताकि उसपर चलना आसान हो सके, क्योंकि इसमें अपने आप का इंकार नहीं करना पड़ता और न ही अपनी इच्छा और फायदों के लिये जीना छोड़ने की ज़रूरत पड़ती है)। ऐसे *झूठे सुसमाचार* की प्रचार सभाओं में लाखों लोग आते हैं। उनमें से बहुत से लोग इस बड़े दरवाजे से प्रवेश करते हैं और चौड़े मार्ग पर चलते हैं और इस गुमान में रहते हैं कि वे जीवन की ओर जा रहे हैं जबकि सच्चाई यह है कि वे नाश की ओर जा रहे हैं। ऐसी प्रचार सभाओं के प्रचारक बड़ी चाह से भीड़ की ओर देखते हैं और उन लोगों की बड़ी संख्या की रिपोर्ट देते हैं जिन्होंने *हाथ ऊँचे कर मसीह को अपनाने का निर्णय लिया*। यह एक बहुत बड़ा धोखा है। हालांकि इन सभाओं में कुछ तो ज़रूर सच्चे मन से समर्पण कर उद्धार पाते हैं क्योंकि उनके मन में सच्चाई है और वो खराई से विश्वास लाते हैं, लेकिन उनके अलावा हाथ ऊँचे करने वालों

की भीड़ में बहुत से ऐसे लोग होते हैं जो *नर्क की दुगनी संतान* (मत्ती 23:15) बन जाते हैं - क्योंकि वे अपनी सही स्थिति के प्रति धोखा खाकर जीवन बिताते हैं।

सत्य (वास्तविक) सुसमाचार दरवाजे को *छोटा* और रास्ते को *संकरा* बनाता है। परंतु उससे छोटा और संकरा नहीं जितना कि यीशु मसीह ने उसे बताया है, कुछ *अतिआत्मिक* धर्मांध ऐसा ही करते हैं। कुछ लोग ही ऐसे हैं जो सच में जीवन पाते हैं। सुसमाचार प्रचारकों के लिये बहुत बड़ी रिपोर्ट नहीं बनती है और गणनाएं भी उत्साहित करने वाली नहीं दीख पड़ती, परंतु यह सुसमाचार लोगों को प्रभु यीशु की तथा स्वर्ग की ओर लेकर जाता है।

इसलिये सावधान रहो कि कैसे सुनते हो। जो सुनकर उसका पालन करता है उसे और रोशनी और समझ दी जायेगी। परंतु जो सुनकर आज्ञापालन नहीं करता, उससे वो सारी समझ और रोशनी भी ले ली जायेगी जो उसके पास है।(लूका 8:18 का सरलार्थ)

वह जिसके पास सुनने के कान हों, वो सुन ले।